ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

वर्ष 7 जुलाई–दिसम्बर 2009 अंक 2

सम्पादक
रामसखा गौतम

सह-सम्पादक
आशीष भट्ट

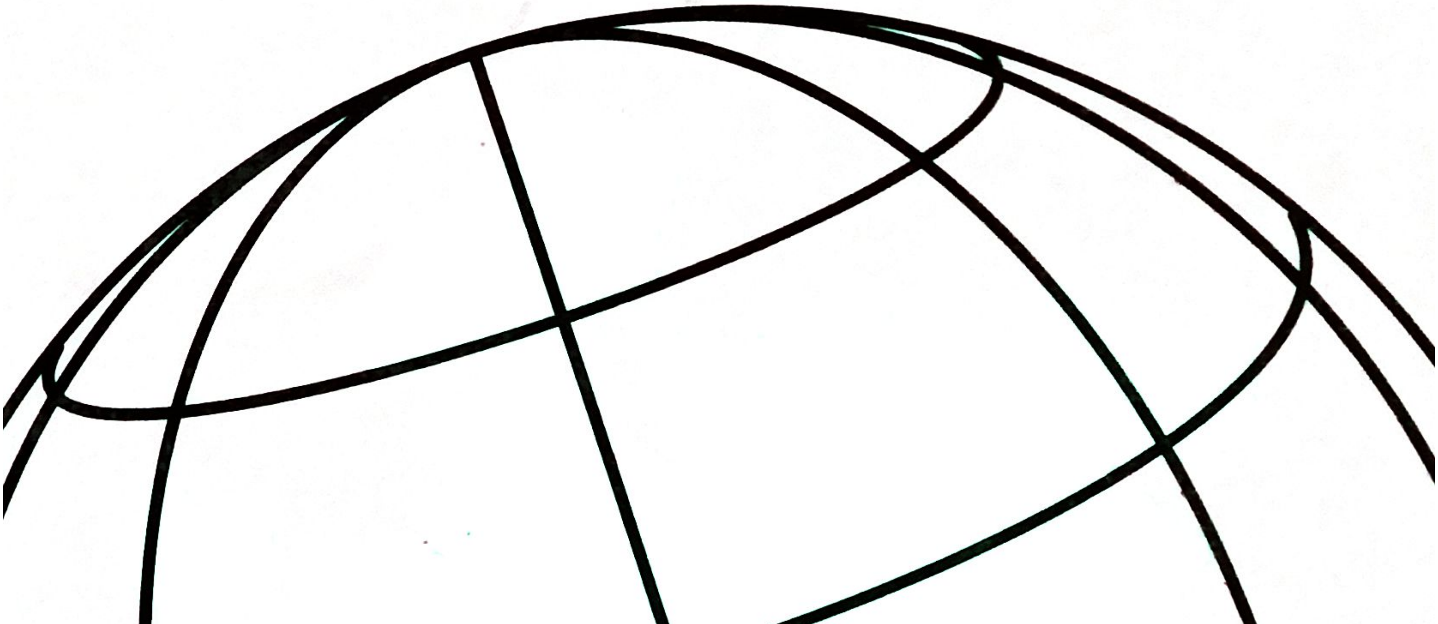

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

(मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का अर्द्धवार्षिक जर्नल)

वर्ष 7 जुलाई-दिसम्बर 2009 अंक 2

वैश्विक आतंकवाद और सार्वभौमिक मानव अधिकार 1

अमित कुमार सिंह

भारत में लैंगिक सम्बन्धों का परिवर्तनशील स्वरूप -
बिहार के सन्दर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 17

विनय कुमार सिन्हा

भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में औद्योगिक घरानों के
सामाजिक उत्तरदायित्व 27

जयकुमार मिश्रा

उपराष्ट्रवाद का सकारात्मक प्रतिरोध : महात्मा गांधी के प्रयास 37

मंजु कुमारी जैन

पंचायत राज संस्थाओं का वित्तीय प्रबन्धनः
मध्यप्रदेश के उज्जैन जिले की ग्राम पंचायतों के विशेष सन्दर्भ में 48

अनिता शर्मा

भारतीय जनजातियों का जनांकिकी विश्लेषण 57

रीता जायसवाल

पुस्तक समीक्षा

लोकतंत्र का नया लोक - चुनावी राजनीति में राज्यों का उभार
(सम्पादक अरविन्द मोहन) 70

माधव प्रसाद गुप्ता

गध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
वर्ष 7, अंक 2, 2009, पृ. 27–36

भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में औद्योगिक घरानों के सामाजिक उत्तरदायित्व

जयकुमार मिश्रा

सभ्यता के विकास के प्रारम्भ के साथ ही मनुष्य ने अपनी समस्याओं का समाधान करने के लिए अपने ही समान दूसरे मनुष्यों से सहयोग लेना शुरू कर दिया। सहयोग लेकर विकास करने तथा साथ ही अपने हितों के लिए परस्पर संघर्ष करते रहने की प्रवृत्ति ने ही सभ्यता को निरन्तर विकासमान बनाये रखा। मनुष्य सदैव से ही सुषुप्त एवं मुखर दोनों ही रूपों में यह मानता रहा है कि मनुष्य होने के कारण, समाज के प्रति भी उसके कतिपय दायित्व हैं। धार्मिक नियम, परम्पराएँ, सामाजिक मूल्य, मान्यताएँ, राज्य, सरकार और पुनः वैश्वीकरण का विचार इसी दायित्व की चेतना से उद्भूत हुए हैं। सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से सामुदायिक हितों की प्राप्ति मानवीय चेतना की एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है। ईसा पूर्व से लेकर लगभग 14वीं सदी तक जितना विकास विश्व का हुआ या जितना परिवर्तन विश्व में हुआ, उससे कहीं अधिक विकास एवं समग्र परिवर्तन 15वीं सदी में होने वाले धर्म सुधार आन्दोलन तथा 18वीं व 19वीं सदी में होने वाली औद्योगिक क्रान्ति ने किया। धर्म सुधार आन्दोलन ने परम्परागत मान्यताओं तथा अन्धविश्वास के स्थान पर तर्क, बुद्धि एवं विवेक को प्रतिष्ठित कर समाज को अप्रगतिशील बन्धनों से मुक्त कर उसे एक अभिनव क्षितिज एवं विस्तार प्रदान किया। इस बुद्धि की अन्वेषी प्रवृत्तियों ने आगे चलकर औद्योगिक क्रान्ति की नींव रखी जो अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक सम्बन्धों की दृष्टि से 'राज्य' की स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन का कारण बन

जाती है। धर्म सुधार आन्दोलन ने यदि लोगों की पारलौकिक सोच को नहीं बदला होता तो कदाचित् औद्योगिक क्रान्ति की उर्वर भूमि तैयार ही नहीं हो पाती लेकिन धर्म सुधार आन्दोलन ने जहाँ धर्म को वरीयता दी वहीं औद्योगिक क्रान्ति ने व्यक्तिवाद और पूँजीवाद को प्रश्रय दिया, जिसमें प्रत्यक्षतः तो 'सामाजिक हित' की बात की जाती थी लेकिन भीतर ही भीतर 'व्यक्ति' के व्यक्तिगत हितों को वरीय माना गया था। औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन तथा वितरण के साधनों की व्यवस्था को पूरी तरह बदल दिया। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व उत्पादन के लिए एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य के श्रम और सहयोग पर निर्भर रहता था जबकि औद्योगिक क्रान्ति ने मशीनीकरण की प्रक्रिया आरम्भ की जिसमें एक ही व्यक्ति मशीनों के माध्यम से अन्य व्यक्तियों का सहयोग लिए बिना ही कई व्यक्तियों जितना काम कर सकता था। इसका एक गम्भीर परिणाम यह हुआ कि अन्य व्यक्तियों के सहयोग और श्रम की आवश्यकता निरन्तर कम होती गयी। इससे सहयोग जैसी सामाजिक प्रक्रिया दुष्प्रभावित हुई। व्यक्ति स्वयं को ही उत्पादन की पूर्ण इकाई के रूप में देखने लगा। फलतः व्यक्तिवाद की विचारधारा को बल मिला जिसके कारण 'सामाजिक हित' और 'समाज के सरोकार' जैसे मानवीय मूल्य पीछे छूट गये। औद्योगिक क्रान्ति ने पूरी तरह से 'स्वकेन्द्रित' व्यक्ति को जन्म दिया, जिसका एकमात्र लक्ष्य सम्पत्ति संचित करना था। औद्योगीकरण का लाभ उन्हीं व्यक्तियों को मिला जो उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों के स्वामी थे। उत्पादन की प्रक्रिया में भूमि, मशीन तथा भौतिक संसाधनों का स्वामित्व जिसके पास था, उसे पूँजीपति वर्ग कहा गया और जो लोग इन संसाधनों से वंचित थे या जिनके पास केवल अपने शारीरिक बल का स्वामित्व था, वे मजदूर वर्ग कहलाये। इस प्रकार समाज दो भागों में बँट गया- एक, श्रम बेचकर जीविकोपार्जन करने वाला वर्ग तथा दो, श्रम का प्रबन्धन करके उत्पादन का स्वामी बना वर्ग। औद्योगिक क्रान्ति ने समाज में अभिजात्यता का आधार श्रम के स्थान पर संसाधनों के स्वामित्व को प्रदान किया। 'श्रम' एवं 'सामाजिक उपयोगिता' को उचित महत्व न देने का ही परिणाम था कि औद्योगिक क्रान्ति ने समाज के उस वर्ग के सरोकारों से स्वयं को दूर कर लिया जिसके श्रम के बल पर इसने अपनी धाक जमायी थी। सामाजिक उत्तरदायित्वों से मुँह मोड़ लेने की प्रवृत्ति के कारण ही कार्ल मार्क्स को औद्योगिक क्रान्ति 'भयावह' लगने लगती है और वह इसे शोषण से जोड़कर देखता है। औद्योगिक समाज में श्रमिकों की भूमिका एवं समाज में उनकी वास्तविक स्थिति को व्यक्त करते हुए नोयल बैवूफ ने लिखा है कि, "जब मैं देखता हूँ कि गरीबों के तन पर न तो कपड़े हैं न ही जूते, यद्यपि गरीब लोग ही कपड़े और जूते बनाते हैं तथापि उन्हें ही यह प्रयोग करने के लिए नहीं मिलते और जब मैं उन लोगों का खयाल करता हूँ जो स्वयं कुछ भी काम नहीं करते, परन्तु उनके

पास किसी भी चीज की कमी नहीं है तो मेरा यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि राज्य अब भी जन साधारण के विरुद्ध कुछ लोगों का षड्यन्त्र मात्र है।" औद्योगिक समाज में निहित अनुत्तरदायित्व की इसी भावना को लेकर आन्दोलन करने वाले नोयल बैवूफ को बाद में मृत्युदण्ड दे दिया गया। यदि औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में ही 'सामाजिक उत्तरदायित्व' के प्रति संवेदनशीलता दिखाई गयी होती तो कदाचित् 'मार्क्सवाद' के पल्लवित-पुष्पित होने के लिए कोई बहुत अधिक अवकाश नहीं मिल पाता।

औद्योगिक क्रान्ति से लेकर आज तक पूँजीवादी विचारधारा, उसकी सोच एवं स्वरूप में बहुत बड़ा परिवर्तन आ चुका है। आज औद्योगिक घराने भी यह समझने लगे हैं कि उन्हें अपने द्वारा बनाये गये माल या तैयार किये गये उत्पादन को एक विशेष समाजिक परिवेश में ही बेचना है अतः उस समाज की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं का ध्यान उन्हें रखना होगा। इसके अतिरिक्त 'राज्य' भी एक बहुत बड़े कारक के रूप में उभरकर सामने आया है, जिसमें मानव जीवन के प्रत्येक अवयव को एक 'विशिष्ट आकार' प्रदान कर दिया गया है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, हमारा संविधान एक लोकतान्त्रिक और लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा प्रस्तुत करता है। जिसके नियन्त्रण से परे हम किसी भी स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जब भारतीय संविधान बन रहा था तभी जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "भारत की सेवा करने का तात्पर्य लाखों ऐसे लोगों की सेवा करना है, जो गरीबी, अज्ञानता/अशिक्षा एवं बीमारियों तथा असमान अवसरों से जूझ रहे हैं, यही हमारे युग के महानतम व्यक्ति का लक्ष्य था कि हर आँख का हर आँसू पोंछ लिया जाये - कोई भी दुःखी या कष्ट में न हो, जब तक यह लक्ष्य प्राप्त नहीं कर लिया जाता हमारे संवैधानिक लक्ष्य पूरे नहीं होंगे।"[1]

संविधान निर्मात्री सभा में बोलते हुए नेहरू ने कहा था कि "स्वतन्त्र भारत में प्रथम कार्य और लक्ष्य यही होना चाहिए कि सभी भूखे लोगों को भोजन मिले, नंगे लोगों को वस्त्र मिले तथा सभी भारतीयों को अपनी उच्चतम क्षमता के साथ व्यक्तित्व की शक्तियों को विकसित करने का अवसर मिल सके। इन लक्ष्यों की प्राप्ति पर ही भारत की उत्तरजीविता निर्भर करेगी। यदि हम अपनी अशिक्षा, भुखमरी, कुपोषण, गरीबी जैसी समस्याओं का सामना नहीं कर पायेंगे, तो भारत का संविधान बनाने में जितने भी कागजात लगे हैं वे सभी व्यर्थ हो जायेंगे...यदि भारत नीचे की ओर गया तो हम सभी रसातल में चले जायेगें और यदि भारत ने उन्नति की तो हम सभी उन्नति करेंगे, भारत जिन्दा रहा तो हम सभी जिन्दा एवं जीवन्त बने रहेंगे।"[2]

वास्तव में भारत का संविधान सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की उद्घोषणा करता है, वह सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति का दस्तावेज है। 'राज्य' या 'व्यक्ति' या 'व्यक्तियों का कोई समूह'

इन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की उपेक्षा नहीं कर सकता। 'राज्य' भी आज नीति-निदेशक तत्वों में निहित मूल्यों या लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रति संवेदनशील एवं उत्सुक हो गया है। उच्च एवं उच्चतम न्यायालय भी न्यायिक निर्णयों के माध्यम से आज इन तत्वों को लागू करने का यथासम्भव प्रयास कर रहे हैं। एक प्रकार से देखा जाय तो कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका तीनों (राज्य के अंग) आज सामाजिक-आर्थिक दायित्वों के प्रति सतर्क हैं।

औद्योगीकरण की ओर गतिशील भारतीय समाज में उद्योग जगत ने भी सामाजिक उत्तरदायित्वों से स्वयं को जोड़ने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया है जिसे सर्वव्यापक स्वीकृति एवं समर्थन भी प्राप्त हुआ है। वास्तव में भारतीय गणतन्त्र के भीतर अपनी गतिविधियाँ संचालित करने वाला कोई भी समुदाय या संस्था भारतीय संविधान के उद्देश्यों से पृथक या प्रतिकूल कोई अपना निजी उद्देश्य निर्धारित नहीं कर सकती। भारत में उद्योग जगत् को एक सम्प्रभुता सम्पन्न, लोकतान्त्रिक गणराज्य के भीतर अपनी गतिविधियाँ संचालित करनी हैं - इस तथ्य ने उद्योग जगत को 'शोषण मूलक गतिविधि' (जैसा कि मार्क्स और उसके अनुयायी मानते रहे हैं) से बाहर निकालकर 'सतत् विकास तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों के साथ विकास करने की प्रवृत्ति' से जोड़ दिया है। भारतीय औद्योगिक जगत के सामाजिक उत्तरदायित्व केवल अपनी कम्पनी के बाहर रह रहे लोगों से सम्बन्धित नहीं हैं, वरन् कम्पनी के भीतर काम करने वाले लोगों से भी सम्बन्धित हैं जैसे - प्रत्येक कम्पनी का अपने कर्मचारियों के प्रति यह दायित्व बनता है कि वह उनसे 'बलात् श्रम' (भारतीय संविधान का अनुच्छेद-23) न कराए, बाल मजदूरी (अनुच्छेद-24) का प्रयोग न करे, अपने यहाँ काम करने वाले लोगों को सेवा सुरक्षा उपलब्ध कराये, पुरुष एवं महिला कर्मचारियों को उनकी शारीरिक क्षमता एवं आवश्यकतानुसार 'कार्य की मानवोचित और न्यायसंगत दशाएँ' (अनुच्छेद-42) उपलब्ध कराए, स्त्री-पुरुष दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जाय (अनुच्छेद-39घ), कर्मचारियों को स्थानान्तरण या पदावनति का भय दिखाकर 'समझौता' करने का प्रयास न करें, उन्हें नीति निर्माण एवं निर्णय प्रक्रिया में सहभागी बनाये, किसी भी औद्योगिक समूह का उत्तरदायित्व अपने उपभोक्ताओं को शिक्षित करने का भी है, जिससे कि 'सतत् उपभोग' को बढ़ावा दिया जा सके, आदि। भारतीय संविधान में वर्णित उपरोक्त प्रावधान मूल रूप से 'राज्य' के सन्दर्भ में है, लेकिन औद्योगिक गतिविधि संचालित करने वाला कोई भी उपक्रम इन प्रावधानों से मुँह नहीं मोड़ सकता, क्योंकि औद्योगिक जगत के द्वारा सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वहन में सामाजिक-आर्थिक प्रगति का मूल-मंत्र निहित है। वह समाज जिसे 'सतत् विकास' करना है, वह सामाजिक-आर्थिक न्याय की अनदेखी नहीं कर सकता। भारतीय संविधान अपनी 'प्रस्तावना' में ही सामाजिक-आर्थिक

न्याय की उद्घोषणा करता है और सर्वोच्च न्यायालय ने इसे भारत के संविधान की मौलिक संरचना घोषित कर दिया है, ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि औद्योगिक घराने अपनी गतिविधियाँ संचालित करते समय इन मूलभूत संवैधानिक प्रावधानों के प्रति कर्तव्यनिष्ठ एवं जागरूक बने रहें। जिस क्षेत्र में औद्योगिक घराने अपने कारखाने लगा रहे हैं, लोगों की जमीनों को खरीद रहे हैं और मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहे हैं, उस क्षेत्र के निवासियों के प्रति उनकी 'नैतिक' जिम्मेदारी बनती है कि अपने उद्योगों में लोगों को काम देकर उन्हें आजीविका उपलब्ध करायें, जिससे वे भी अपने जीवन-स्तर को उन्नत बना सकें। भारत जैसे लोकतान्त्रिक एवं विकासशील देश में आर्थिक प्रगति एवं सामाजिक पुनरुत्थान को एक-दूसरे से जोड़कर देखने की आवश्यकता है।

औद्योगिक घराने इस बात का तर्क दे सकते हैं कि सामाजिक दायित्वों को पूरा करने के प्रयास में उनके 'लाभ' में कमी आ रही है, इस सन्दर्भ में सोली जे. सोराबजी का यह कथन ध्यातव्य है कि, "यदि कोई व्यक्ति अपने यहाँ विवाह पर करोड़ों रुपये खर्च कर रहा है, तो उससे यह कहा जाना चाहिए कि इस भारी-भरकम व्यय का दस प्रतिशत गरीब एवं वंचित वर्ग के पुनरुत्थान के लिए खर्च करे।"[3] औद्योगिक मुनाफे का थोड़ा-बहुत अंश समाज के लिए अवश्य प्रयोग किया जाना चाहिए। औद्योगिक उत्पादन को मानवीय प्रगति के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने की आवश्यकता है।

आज इस बात की आवश्यकता है कि औद्योगिक जगत को भी अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्ग तथा अल्पसंख्यक वर्ग की समस्याओं एवं आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील बनाया जाय। उद्योग जगत में भी इनके लिए यथासम्भव स्थान सुनिश्चित किये जाए, लेकिन जो बात 'राज्य' के सन्दर्भ में अनुच्छेद-335 कहता है, उसका औद्योगिक जगत के परिप्रेक्ष्य में भी ध्यान रखा जाना चाहिए। अनुच्छेद-335 के अनुसार, "संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से सम्बन्धित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियाँ करने में, अनुसूचित जतियों और जनजातियों के सदस्यों के दावों का, प्रशासन की दक्षता बनाये रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जायेगा।" आरक्षण एक संवेदनशील मुद्दा है, जो भारत जैसे परम्परावादी समाज में उस वर्ग को प्रगति की मुख्य धारा में लाने का साधन है, जो लम्बे समय से हाशिये पर खड़ा है, लेकिन इस अनुच्छेद की मूल भावना के अनुसार ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए, यदि कहीं आरक्षण का पालन करने से किसी राज्य या औद्योगिक संगठन की गुणवत्ता प्रभावित होती है, तो इसका प्रयोग 'पुनर्विचार' को आमन्त्रित करेगा। हम वैश्वीकरण के युग में जी रहे हैं हमें अपने सामाजिक न्याय तथा गुणवत्तापूर्ण आर्थिक विकास के बीच सुविचारित सामंजस्य

स्थापित करने की आवश्यकता है। यह बड़े सन्तोष की बात है कि भारतीय उद्योग परिसंघ, एसोचैम, फिक्की, पी.एच.डी.सी.सी.आई. इन सभी चैम्बर्स ने एक आचार संहिता निजी क्षेत्र में आरक्षण लागू करने के सम्बन्ध में तैयार कर ली है, जिन पर सदस्य कम्पनियों को विचार करके लागू करना है।[4]

आज औद्योगिक घराने अपने उत्पादों के प्रचार के लिए जिस प्रकार के 'मॉडल' का प्रयोग कर रहे हैं, उससे एक बात तो स्पष्ट है कि सामान्य मानवीय नैतिक आचरण और चरित्र पर दबाव बढ़ रहा है। मोटोयुवा का वह विज्ञापन, जिसमें एक पिता अपने जवान बेटे से कुछ कह रहा है, लेकिन वह कान में ईयरफोन लगाकर गाना सुनने में व्यस्त रहता है, इसके बाद मोटोयुवा का एक अन्य विज्ञापन यह दिखाता है कि किस प्रकार एक छात्र पढ़ने का नाटक करते हुए अपने टीचर की तस्वीर बना रहा है। इसी प्रकार वर्जिन मोबाइल के विज्ञापन में यह दिखाया गया कि एक लड़का एक महिला को सिर्फ इसलिए अपना फोन दे देता है कि वह उसकी बेटी पर डोरे डाल सके, इन विज्ञापनों ने एक नयी बहस शुरू कर दी है कि कहीं ये विज्ञापन बच्चों को गलत सन्देश तो नहीं दे रहे हैं? इससे एक नये संकट के उपजने की भी सम्भावना है। कोई भी देश अपनी सभ्यता व संस्कृति पर किसी भी अप्रत्याशित आक्रमण को रोकने की कोशिश करता है, तो उद्योग जगत उसे 'ग़ैर व्यावसायिक कदम' घोषित कर देता है। इस द्वन्द्व को आज समझने की आवश्यकता है। वस्तुतः व्यापारिक प्रचार-प्रसार जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है अपनी संस्कृति के सरोकारों से जुड़े रहना, दोनों के बीच द्वन्द में समझौता नहीं हो सकता, लेकिन समन्वय एवं सन्तुलन अवश्य बनाया जा सकता है और यही आज की आवश्यकता है।

भारत में आज औद्योगिक घराने अपने कर्मचारियों, ग्राहकों तथा कम्पनी के शेयरधारकों के हितों के साथ-साथ पर्यावरण की भी चिन्ता करने लगे हैं। आज औद्यागिक घरानों के सामाजिक उत्तरदायित्व को 'सर्वसमावेशी विकास' के साथ जोड़ कर देखा जाने लगा है, इस कारण औद्योगिक जगत् को भी 'राज्य' की ही भाँति एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन करने वाले घटक के रूप में मान्यता मिली है। औद्योगिक घरानों ने यह स्वीकार कर लिया है कि समाज से शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, कुपोषण, बाल मृत्यु-दर एवं मातृत्व मृत्यु-दर आदि से सम्बन्धित समस्याओं का उन्मूलन करने में यदि वे सहयोग कर सकें तो एक ऐसे सामाजिक वातावरण का सृजन किया जा सकेगा, जहाँ लोग बेहतर जीवन-स्तर के साथ उत्पादों का उपभोग कर सकें। यदि समाज में सम्पन्नता का स्तर ऊँचा होगा, तो वस्तुओं की माँग भी बढ़ाई जा सकती है। सामाजिक समस्याओं का समाधान करके ही हम एक ऐसे वातावरण का

सृजन कर सकेंगे, जहाँ बेहतर औद्योगिक निष्पादन की सम्भावनाएँ हों। अब इस बात को सभी औद्योगिक घराने स्वीकार करने लगे हैं कि आर्थिक विकास, सामाजिक-कल्याण और प्राकृतिक संरक्षण के बीच एक दीर्घकालीन संतुलन की आवश्यकता है और इसके लिए नियमों-कानूनों का निर्माण कर उसे उचित ढंग से क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। राज्य/सरकार को औद्योगिक घरानों की पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी सुनिश्चित करने हेतु एक प्रयास यह करना चाहिए कि, प्रतिवर्ष कम्पनी की उत्पादन प्रक्रिया के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का एक रिपोर्ट-कार्ड प्राप्त करे तथा उसकी सत्यता की जाँच करे, जैसे- कम्पनी के उत्पादन प्रणाली का जैव विविधता पर क्या प्रभाव पड़ा? कम्पनी ने पानी, बिजली, ईंधन की न्यूनतम खपत हेतु कौन सा प्रबन्ध किया है? कम्पनी ने ऊर्जा के अपारम्परिक स्रोतों से कितनी ऊर्जा प्राप्त और प्रयोग की? कम्पनी ने उत्पादन प्रक्रिया के दौरान जल, वायु, ध्वनि और मृदा प्रदूषण को कितना बढ़ाया है या इसे कम किया है, श्रम कानूनों को लागू करने या उनका पालन सुनिश्चित कराने की दिशा में कम्पनी ने क्या कदम उठाया है? आज नागरिकों को भी सूचना का अधिकार मिला हुआ है, कम्पनियों को भी चाहिए कि वे अपने कार्य प्रणाली और निर्णय प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने तथा उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने हेतु अपने शेयरधारकों, कर्मचारियों और श्रमिकों आदि कम्पनी के अंगों को कम्पनी से सम्बन्धित सूचनाएँ प्रदान करें। यदि राज्य जैसी सर्वोच्च संस्था को लोक-कल्याण की कसौटी पर कसा जा सकता है, तो लाभ-हानि के आधार पर कार्यरत औद्योगिक घराने अपने शेयरधारकों तथा कर्मचारियों के प्रश्नों तथा उनके कल्याण से जुड़े मुद्‌दों पर अपने दायित्व से कैसे बच सकते हैं?

अब हम औद्योगिक घरानों के बाह्य समाज के प्रति दायित्व की चर्चा करेंगे। वस्तुतः प्रत्येक औद्योगिक गतिविधि हमारी सामाजिक व्यवस्था तथा पर्यावरणीय परिदृश्य पर प्रभाव डालती है। लम्बे समय तक औद्योगिक घरानों ने उत्पादन बढ़ाने एवं लाभ कमाने की प्रत्याशा में इस ओर ध्यान नहीं दिया, लेकिन 1970-80 के दशक से जबसे पर्यावरणीय चेतना फैलनी प्रारम्भ हुई, इस ओर औद्योगिक घरानों ने ध्यान देना शुरू कर दिया है। आज औद्योगिक घरानों के 'सोशल एकाउन्टिंग, सोशल ऑडिटिंग तथा सोशल रिपोर्टिंग'[5] की बात की जा रही है और भारत ने इस सन्दर्भ में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों को स्वीकार कर लिया है, जैसे- आयएसओ 9000, आयएसओ 14000 आदि। भारत में आज उपभोक्ता भी औद्योगिक घरानों के सामाजिक उत्तरदायित्व के सन्दर्भ में अत्यन्त जागरूक हो गये हैं। उपभोक्ता व्यवहार को लेकर 'गुड पर्पज' नामक संगठन ने एक अध्ययन किया है। इस अध्ययन में भारतीय उपभोक्ताओं के बारे में एक बात यह उभर कर सामने आयी है कि भारतीय ग्राहक उन ब्राण्डों को वरीयता

देते हैं, जो समाज को बेहतर बनाने की दिशा में अपना योगदान दे रहे हैं। इस सर्वेक्षण में सम्मिलित लोगों में से 87 प्रतिशत का कहना था कि वे उन ब्राण्डों को तरजीह देते हैं, जो स्थानीय समुदाय के लाभ से जुड़े है, इसी प्रकार 90 प्रतिशत लोगों ने कहा कि वे सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने वाली कम्पनियों के उत्पाद खरीदने को वरीयता देते हैं। पेप्सी कम्पनी की जब इस बात के लिए भारत में आलोचना होने लगी कि उसके द्वारा भूगर्भ जल के अत्यधि ाक एवं अन्धाधुन्ध दोहन से भूगर्भ जल का स्तर दक्षिण भारत में अनेक जगहों पर नीचे चला गया है और इससे आम नागरिकों को कठिनाईयाँ हो रही हैं, तो पेप्सी ने आलोचना से बचने के लिए भूगर्भ जल की पूर्ति की व्यवस्था प्रारम्भ की। इसी प्रकार पेप्सी ने पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए 'बेस्ट टू वेल्थ' नाम के कार्यक्रम की शुरुआत की। इस प्रकार के कार्यक्रमों में कोकाकोला भी पीछे नहीं है। कोक ने वर्षा जल के संरक्षण के लिए एक कार्यक्रम शुरू किया है, जिसका बड़ा सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। आयसीआयसीआय बैंक ने भी पिछले वर्ष गरीबों की आय बढ़ाने के लिए एक फाउण्डेशन शुरू किया है, इस फाउण्डेशन की बेबसाइट पर इस बात का उल्लेख है कि बैंक अपने मुनाफे में से प्रतिवर्ष एक प्रतिशत इस फाउण्डेशन को देगा। बंगलौर स्थित ग़ैर सरकारी संगठन 'जनाग्रह' के दिमाग की उपज और टाटा टी द्वारा समर्थित एवं वित्त पोषित 'जागो रे डॉट कॉम' को लोकसभा चुनावों में अत्यन्त पसन्द किया गया। इस साइट पर मतदाता पहचान पत्र बनवाने से लेकर, उसे जमा कराने एवं मतदान के दिन किस प्रकार से मतदान करना है आदि की जानकारी मतदाता को देने की व्यवस्था की गयी। भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश में यह कारपोरेट जगत की अनूठी पहल थी, जिसमें लोगों को बताया गया कि 'यदि आप चुनाव वाले दिन बूथ पर जाकर मतदान नहीं कर रहे हैं, तो इसका मतलब है कि आप सो रहे हैं।' टाटा टी और 'जनाग्रह' की इस भागीदारी का उद्देश्य एक ऐसे मंच को विकसित करना है, जो भारतीय युवाओं को देश की निर्वाचन प्रक्रिया में सक्रियता से भाग लेने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करें। किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था में नागरिकों को सक्रियता से भाग लेने के लिए उन्हें जागरूक बनाने का कार्य स्वयं में ही एक बहुत बड़े सामाजिक परिवर्तन का सूत्रपात है। पिछले दिनों टाइम्स फाउण्डेशन (टाइम्स ऑफ इण्डिया अखबार से सम्बद्ध) ने लोगों को साक्षर बनाने के लिए 'टीच इण्डिया' नामक अभियान प्रारम्भ किया है। इसके अन्तर्गत छात्रों और स्नातक शिक्षा प्राप्त लोगों को आवेदन करने के लिए कहा जाता है। अशिक्षा रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सैकड़ों लोग इस अभियान से जुड़ चुके हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21ए तथा मौलिक कर्तव्य से जुड़े अनुच्छेद 51ए में शिक्षा के सन्दर्भ में जो बातें कही गयी हैं, ये प्रयास इन अनुच्छेदों की मूल भावना की पूर्ति की दिशा

में एक प्रयास है। इसी संगठनात्मकता एवं रचनात्मकता को आधार बनाकर कुछ अन्य कार्यक्रम भी शुरू किये जा सकते हैं, जैसे- 'क्लीन इण्डिया' (जिसमें साफ-सफाई की आवश्यकता से लोगों को परिचित कराया जाय), 'गवर्न इण्डिया' (इसके द्वारा लोगों को देश की लोकतान्त्रिक प्रणाली से जोड़कर उन्हें सद्नागरिक के रूप में प्रस्तुत किया जाय जिससे लोगों के मन में नागरिक दायित्व का विकास हो सके), 'सेफ ऐण्ड सिक्योर इण्डिया' (इसके द्वारा भारतीयों को आतंकवाद एवं नक्सलवाद से लड़ने के तौर-तरीके सिखाये जायें तथा मानसिक-शारीरिक रूप से सक्षम बनाया जाय, जिससे वे इन समस्याओं का सामना कर सकें) आदि। इसी प्रकार 'सूचना के अधिकार', 'मौलिक अधिकार' और 'मौलिक कर्तव्य' आदि के प्रति जन-चेतना पैदा करने का कार्य यदि औद्योगिक घरानों द्वारा किया जाता है, तो हमारे संवैधानिक प्रावधान एक नया सन्दर्भ और प्रासंगिकता प्राप्त कर लेगें तथा साथ ही औद्योगिक घरानों का एक नया मानवीय चेहरा सामने आ सकता है। हिन्दुस्तान यूनीलीवर कम्पनी ने अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के अन्तर्गत मध्यप्रदेश में ग़ैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर लोगों में स्वास्थ्य-पोषण तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से लड़ने के लिए 'सेहतमन्द परिवार- सेहतमन्द भारत' अभियान शुरू करने की घोषणा की है। इसके अन्तर्गत चयनित ग्राम पंचायतों में स्वास्थ्य एवं पोषण की शिक्षा दी जायेगी।

औद्योगिक घरानों द्वारा सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने की इस भावना का प्रभाव कम्पनी में कार्य कर रहे कर्मचारियों के मनोवृत्तियों एवं मनोबल पर भी पड़ता है। एक व्यक्ति के रूप में जब वे कम्पनी की इन सामाजिक गतिविधियों को देखते हैं तो उन्हें एक ऐसी कम्पनी का हिस्सा बनने में गौरव का अनुभव होता है, जो समाज के प्रति अपने दायित्वों का निष्ठापूर्वक पालन कर रही हो। फलतः वे कर्मचारी कम्पनी के प्रति पूरी तरह वफादार हो जाते हैं तथा अपना काम बेहतर ढंग से करने का प्रयास करते हैं। यदि किसी कम्पनी के उत्पादन कार्यों से पर्यावरण को क्षति पहुँचे या उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार उजागर हो जाय, तो कम्पनी की जो सामाजिक आलोचना होगी, उसका प्रभाव कम्पनी के कर्मचारियों के मनोबल पर तथा कम्पनी की निष्पादन क्षमता पर भी पड़ेगा। इसलिए कम्पनी को 'सतत सही रास्ते पर चलने की प्रवृत्ति' अपनानी होगी तभी एक 'ब्राण्ड' के रूप में उसकी प्रतिष्ठा बनेगी और बढ़ेगी। यह भी एक सामाजिक दायित्व है कि कम्पनी सफलता के लिए कोई 'शार्टकट' न तलाशे, क्योंकि वर्षों में कमाई गई 'प्रतिष्ठा' को नष्ट होने के लिए केवल कुछ घण्टे ही पर्याप्त हैं। औद्योगिक घरानों के सामाजिक उत्तरदायित्व न केवल कर्मचारियों को कम्पनी से जोड़ने में मदद करते हैं, वरन जनता में उनकी उत्तम छवि बनाने में तथा उनके उत्पाद की बिक्री बढ़ाने में भी मदद करते

है। आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का बोलबाला है, इनका कार्यक्षेत्र विश्व के अनेक देशों में फैला होता है। इनका यह सामाजिक दायित्व है कि जहाँ भी उत्पादन एवं वितरण का कार्य करें, उस देश के मूल्यों, मान्यताओं, सामाजिक परम्पराओं, श्रम मानदण्डों, उत्पादन के मानदण्डों तथा पर्यावरणीय सन्तुलन का अवश्य ध्यान रखें, इससे उस देश के निवासियों के मन में एक बेहतर छवि बनाने में मदद मिलेगी तथा साथ ही वे 'गुड कारपोरेट सिटिज़न' के रूप में भी स्वयं को प्रतिष्ठित कर सकेंगे। वैश्वीकरण के इस युग में यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि उत्पादन एवं आर्थिक क्रिया-कलापों से जुड़ी कम्पनियों का 'लाभ कमाना' महत्वपूर्ण एवं आवश्यक कार्य है, लेकिन उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य अपने सम्पूर्ण उत्पादन एवं वितरण प्रक्रिया को न्यायसंगत बनाना है, जिसमें सभी कर्मचारियों तथा उपभोक्ताओं के साथ न्याय करने की बात निहित है। यदि हम औद्योगिक जगत को सिटिजन/नागरिक के रूप में सम्मान दे रहे हैं या उसे अधिकार दे रहे हैं या उसे सशक्त बना रहे हैं, तो उसका भी यह कर्तव्य है कि वह नागरिक दायित्वों का गम्भीरता से पालन सुनिश्चित करे, जिससे कि सामाजिक-आर्थिक प्रगति में औद्योगिक जगत को भी सहभागी बनाया जा सके। वास्तव में नागरिक दायित्वों का निर्वहन करके ही औद्योगिक जगत अपना मानवीय स्वरूप स्थापित कर पायेगा।

सन्दर्भ

1. ग्रेनविल ऑस्टिन, **द इण्डियन कान्स्टीट्यूशनः कार्नर स्टोन ऑफ ए नेशन**, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 26.
2. सी.ए.डी., II, 3, 1, 316, 317, 318.
3. सोराबजी, सोली जे, रूल ऑफ लॉः इट्स एम्बिट एण्ड डायमेंशन, एन.आर. माधवा मेनन (सम्पा.) **रूल ऑफ लॉ इन ए फ्री सोसायटी**, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली, 2008, पृष्ठ 9.
4. 17 अगस्त, 2009 को दैनिक जागरण (वाराणसी संस्करण) को दिये गये साक्षात्कार में केन्द्रीय सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्री मुकुल वासनिक का वक्तव्य, पृष्ठ 10.
5. ग्रे, आर एच, ऑवन, डी एल एवं माउण्डर्स, के टी, **कारपोरेट सोशल रिपोर्टिंग, एकाउन्टिंग एण्ड एकाउन्टेबिलिटी,** हेमेल हेम्पस्टेड, प्रेन्टिस हॉल, 1987.